

१८. ब्रह्मदत्तस्य कथा ।

प्रणम्य परया भक्त्या जिनेन्द्रं जगदर्चितम् । ब्रह्मदत्तकथां वक्ष्ये सतां सद्बोधहेतवे ॥१॥
 काम्पिल्यनगरेऽत्रैव राजा ब्रह्मरथः सुधीः । राज्ञी रूपगुणोपेता रामिल्या प्राणवल्लभा ॥२॥
 तयोर्द्वादशचक्रेशो ब्रह्मदत्तोभवत्सुतः । षट्खण्डमण्डितां पृथ्वीं संसाध्य सुखतः स्थितः ॥३॥
 एकदा सूपकारश्च तस्मै विजयसेनवाक् । भोजनावसरे तप्तं पायसं दत्तवांस्ततः ॥४॥
 उष्णत्वात्तेन तद्भोक्तु-मसमर्थेन चक्रिणा । तेनैव पायसेनाशु क्रोधान्धेन कुबुद्धिना ॥५॥
 मस्तके दाहयित्वा च सूपकारः स मारितः । धिक्कोपं प्राणिनां लोके कष्टकोटिविधायकम् ॥६॥
 ततो विजयसेनोसौ सूपकारः सुदुःखितः । मृत्वा क्षारसमुद्रस्थे रत्नद्वीपे सुविस्तृते ॥७॥
 भूत्वा व्यन्तरदेवश्च विभंगज्ञानचक्षुषा । ज्ञात्वा पूर्वभवं कष्टं महाकोपेन कम्पितः ॥८॥
 परिव्राजकरूपेण पूर्ववैरेण संयुतः । कदल्यादिमहामिष्ट-फलान्यादाय वेगतः ॥९॥
 तत्रागत्य ततस्तस्मै ब्रह्मदत्ताय दत्तवान् । स जिह्वालम्पटश्चक्री भक्षित्वा सुफलानि च ॥१०॥

१८. ब्रह्मदत्त की कथा

परम भक्ति से संसार पूज्य जिन भगवान् को नमस्कार कर मैं ब्रह्मदत्त की कथा लिखता हूँ । वह इसलिए कि सत्पुरुषों को इसके द्वारा कुछ शिक्षा मिले ॥१॥

काम्पिल्य नामक नगर में एक ब्रह्मरथ नाम का राजा रहता था । उसकी रानी का नाम था रामिली । वह सुन्दरी थी, विदुषी थी और राजा को प्राणों से भी कहीं प्यारी थी । बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त इसी के पुत्र थे । वे छह खण्ड पृथ्वी को अपने वश करके सुखपूर्वक अपना राज्य शासन का काम करते थे ॥२-३॥

एक दिन राजा भोजन करने को बैठे उस समय उनके विजयसेन नाम के रसोइये ने उन्हें खीर परोसी । पर वह बहुत गरम थी, इसलिए राजा उसे खा न सके । उसे इतनी गरम देखकर राजा रसोइये पर बहुत गुस्सा हुए । गुस्से में आकर उन्होंने खीर के उसी बर्तन को रसोइये के सिर पर दे मारा । उसका सिर सब जल गया । साथ ही वह मर गया । हाय ! ऐसे क्रोध को धिक्कार है, जिससे मनुष्य अपना हिताहित न देखकर बड़े-बड़े अनर्थ कर बैठता है और फिर अनन्त काल तक कुगतियों में दुःख भोगता रहता है ॥४-६॥

रसोइया बड़े दुःख से मरा सही, पर उसके परिणाम उस समय भी शान्त रहे । वह मरकर लवण समुद्रान्तर्गत विशालरत्न नामक द्वीप में व्यन्तर देव हुआ । विभंगावधिज्ञान से वह अपने पूर्वभव की कष्ट कथा जानकर क्रोध के मारे काँपने लगा । वह एक संन्यासी के वेष में राजा के पास आया और राजा को उसने केला, आम, सेव, सन्तरा आदि बहुत से फल भेंट किए । राजा जीभ की लोलुपता से उन्हें खाकर संन्यासी से बोला-साधुजी, कहिए आप ये फल कहाँ से लाये? और कहाँ

सन्तुष्टः पृष्ठवानित्थं परिव्राजक भो वद। ईदृशानि फलान्युच्चैः कुत्र सन्ति प्रियाणि च ॥११॥
तच्छ्रुत्वा सोपि संप्राह समुद्रे भो नरेश्वर। मदीयमठसान्निध्ये वाटिकायां बहून्यलम् ॥१२॥
तदाकर्ण्य नृपस्तत्र गन्तुकामोभवत्तराम्। शुभाशुभं न जानाति हा कष्टं लम्पटः पुमान् ॥१३॥
अन्तःपुरादिसंयुक्तं नीत्वा तं तेन सागरे। मारणार्थं समारब्धस्तथोच्चैरुपसर्गकः ॥१४॥
तदा पञ्चनमस्कारं स्मरन्तं चक्रवर्त्तिनम्। देवो मारयितुं तत्र न समर्थो बभूव च ॥१५॥
ततोसौ प्रकटो भूत्वा देवो दुष्टाशयोवदत्। रे रे दुष्ट त्वया कष्टं मारितोहं पुरा किल ॥१६॥
अतोहं मारयामि त्वां साम्प्रतं बहु दुःखतः। यदि त्वं नास्ति जैनेन्द्र-शासनं भुवनत्रये ॥१७॥
भणित्वेति प्रशस्योच्चैः स्ववाक्यैः परदर्शनम्। लिखित्वा च जले पञ्च-नमस्कारपदानि च ॥१८॥
विनाशयसि पादेन त्वां मुञ्चामि तदा ध्रुवम्। ब्रह्मदत्तस्ततो मिथ्या-दृष्टिश्चक्रे तदीरितम् ॥१९॥
मारितः सिन्धुमध्येऽसौ व्यन्तरेण सुवैरिणा। सप्तमं नरकं प्राप्तो मिथ्यात्वं कष्टकोटिदम् ॥२०॥

मिलेंगे? ये तो बड़े ही मीठे हैं। मैंने तो आज तक ऐसे फल कभी नहीं खाये। मैं आपकी इस भेंट से बहुत खुश हुआ ॥७-११॥

संन्यासी ने कहा, महाराज, मेरा घर एक टापू में है। वहीं एक बहुत सुन्दर बगीचा है। उसी के फल हैं और अनन्त फल उसमें लगे हुए हैं। संन्यासी की रसभरी बात सुनकर राजा के मुँह में पानी भर आया। उसने संन्यासी के साथ जाने की तैयार की। सच है-॥१२-१३॥

जिह्वा लोलुपी पुरुष भला-बुरा नहीं जान पाते, यह बड़े दुःख की बात है। यही हाल राजा का हुआ। जब वह लोलुपता के वश हो उस संन्यासी के साथ समुद्र के बीच में पहुँचा, तब उसने राजा को मारने के लिए बड़ा कष्ट देना शुरू किया। चक्रवर्ती अपने को कष्टों से घिरा देखकर पंचनमस्कार मंत्र की आराधना करने लगा। उसके प्रभाव से कपटी संन्यासी की सब शक्ति रुद्ध हो गई। वह राजा को कुछ कष्ट न दे सका। आखिर प्रकट होकर उसने राजा से कहा-दुष्ट, याद है? मैं जब तेरा रसोइया था, तब तूने मुझे जान से मार डाला था? वहीं आग आज मेरे हृदय को जला रही है और उसी को बुझाने के लिए, अपने पूर्व भव का बैर निकालने के लिए मैं तुझे यहाँ छलकर लाया हूँ और बहुत कष्ट के साथ तुझे जान से मारूँगा, जिससे फिर कभी तू ऐसा अनर्थ न करे। पर यदि तू एक काम करे तो बच भी सकता है। वह यह कि तू अपने मुँह से पहले तो यह कह दे कि संसार में जिनधर्म ही नहीं है और जो कुछ है वह अन्य धर्म है। इसके सिवा पंचनमस्कार मंत्र को जल में लिखकर उसे अपने पाँवों से मिटा दे, तब मैं तुझे छोड़ सकता हूँ। मिथ्यादृष्टि ब्रह्मदत्त ने उसके बहकाने में आकर वही किया जैसा उसे देव ने कहा था। उसका व्यन्तर के कहे अनुसार करना था कि उसने चक्रवर्ती को उसी समय मारकर समुद्र में फेंक दिया। अपना बैर उसने निकाल लिया। चक्रवर्ती मरकर मिथ्यात्व के उदय से सातवें नरक गया। सच है मिथ्यात्व अनन्त दुःखों का देने वाला है। जिसका जिनधर्म पर विश्वास नहीं क्या उसे इस अनन्त दुःखमय संसार में कभी सुख हुआ है? नहीं। मिथ्यात्व के समान

यस्य चित्ते न विश्वासो धर्मे श्रीजिनभाषिते। तस्य किं कुशलं लोके महादुष्कर्मकारिणः ॥२१॥
 मिथ्यात्वेन समं किंचिन्निन्द्यं न भुवनत्रये। यतोऽसौ चक्रवर्ती च सप्तमं नरकं गतः ॥२२॥
 तस्मात्तद्दूरतस्त्यक्त्वा मिथ्यात्वं वान्तिवद्बुधाः। स्वमोक्षसाधने हेतुं सम्यक्त्वं भावयन्तु वै ॥२३॥
 देवोर्हन्भुवनत्रयेऽत्र नितरां दोषौघसङ्गोज्झितो देवेन्द्रार्कनरेन्द्रखेचरशतैर्भक्त्या सदाभ्यर्चितः।
 तद्वाक्यं भवसागरप्रवहणप्रायं महाशर्मदं नित्यं चेतसि भावितं च भवतां कुर्याद्वरं मङ्गलम् ॥२४॥
 इति कथाकोशे ब्रह्मदत्तचक्रिणः कथा समाप्ता।

१९. श्रीश्रेणिकनृपस्य कथा

नत्वा जिनं जगत्पूज्यं केवलज्ञानलोचनम्। वक्ष्ये श्रीश्रेणिकस्योच्चैः सत्कथां श्रेयसे नृणाम् ॥१॥
 देशेऽत्र मगधे ख्याते पुरे राजगृहे परे। राजा श्रीश्रेणिकस्तत्र राजविद्याविराजितः ॥२॥
 तद्राज्ञी चेलिनी नाम्नी सम्यग्दृष्टिर्विचक्षणा। श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्ज-पूजनैकपरायणा ॥३॥
 एकदा श्रेणिकेनोक्तं शृणु त्वं देवि वक्ष्यहम्। सर्वधर्मप्रधानोयं विष्णुधर्मोऽत्र वर्तते ॥४॥
 अतस्त्वया रतिः कार्या तत्रैवाशु सुखप्रदे। तदाकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं जैनतत्त्वेषु निश्चला ॥५॥
 चेलना विनयोपेता संजगाद प्रियं वचः। भो देव विष्णुभक्तानां भोजनं दीयते मया ॥६॥

संसार में और कोई इतना निन्द्य नहीं है। उसी से तो चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त सातवें नरक गया। इसलिए आत्महित के चाहने वाले पुरुषों को दूर से मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति का कारण सम्यक्त्व ग्रहण करना उचित है ॥१४-२३॥

संसार में सच्चे देव अरहन्त भगवान् हैं, जो क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण, रोग, शोक, चिन्ता, भय आदि दोषों से और धन-धान्य, दासी-दास, सोना-चाँदी आदि दस प्रकार के परिग्रह से रहित हैं, जो इन्द्र, चक्रवर्ती, देव, विद्याधरों द्वारा बंध हैं, जिनके वचन जीव मात्र को सुख देने वाले और भव समुद्र से तिरने के लिए जहाज समान हैं, उन अर्हन्त भगवान् का आप पवित्र भावों से सदा ध्यान किया कीजिए कि जिससे वे आपके लिए कल्याण पथ के प्रदर्शक हो ॥२४॥

१९. श्रेणिक राजा की कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्र के द्वारा समस्त संसार के पदार्थों के देखने, जानने वाले और जगत्पूज्य श्री जिनभगवान् को नमस्कार कर मैं राजा श्रेणिक की कथा लिखता हूँ, जिसके पढ़ने से सर्वसाधारण का हित हो। श्रेणिक मगध देश के अधीश्वर थे। मगध की प्रधान राजधानी राजगृह थी। श्रेणिक कई विषयों के सिवा राजनीति के बहुत अच्छे विद्वान् थे। उनकी महारानी चेलना बड़ी धर्मात्मा, जिनभगवान् की भक्त और सम्यग्दर्शन से विभूषित थी। एक दिन श्रेणिक ने उससे कहा-देखो, संसार में वैष्णव धर्म की बहुत प्रतिष्ठा है और वह जैसा सुख देने वाला है वैसा और धर्म नहीं। इसलिए तुम्हें भी उसी धर्म का आश्रय स्वीकार करना उचित है। सुनकर चेलना देवी, जिसे कि जिनधर्म पर अगाध विश्वास था, बड़े विनय से बोली-नाथ, अच्छी बात है, समय पाकर मैं इस विषय की परीक्षा करूँगी ॥१-६॥